International Journal of Home Science 2017; 3(2): 759-761

ISSN: 2395-7476
IJHS 2017; 3(2): 759-761
© 2017 IJHS
www.homesciencejournal.com
Received: 13-03-2017
Accepted: 14-04-2017

अमृता कौशिक
शोद्यार्थिनी, गृहविज्ञान संकाय,
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान,
भारत

डॉ मीनाक्षी गुप्ता
निर्देशिका, वस्त्र आकल्पन विभाग,
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान,
भारत

Correspondence
अमृता कौशिक
शोद्यार्थिनी, गृहविज्ञान संकाय,
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान,
भारत

उत्तराखण्ड के वस्त्राभूषण

अमृता कौशिक, डॉ मीनाक्षी गुप्ता

प्रस्तावना

भारत देश के उत्तर में स्थित पर्वतीय भू – भाग को उत्तराखण्ड नाम से जाना जाता है जो मुख्य रुप से दो ईकाइयों में विभक्त है कुमाँऊ मण्डल और गढ़वाल मण्डल। उत्तराखण्ड की ऐतिहासिक भौगोलिक पृष्ठभूमि की अपनी अलग विशेषता रही है इस कारण से यहाँ की धार्मिक सांस्कृतिक, रीति – रिवाज आदि भी अपनी अलग पहचान लिए हुए है।

उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक विधाओं में विभिन्न धर्म, पूजा – कर्म, जातियाँ, संस्कार, पर्व–उत्सव एवं परम्पराओं, रीति–रिवाजों आदि के अनुसार यहाँ के ऐतिहासिक सामाजिक एवं भौगोलिक आधारों पर यहाँ के लोगों का पहनावा या वस्त्राभूषण आदि भी भिन्नता लिए है जो है दृष्टि से ना केवल मनमोहक व आकर्षक है वरन् इस क्षेत्र की विशिष्टता का द्योतक भी है। जो उत्तराखण्ड की संस्कृति में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। उत्तराखण्ड की संस्कृति की यह महत्त्वपूर्ण कड़ी इस क्षेत्र को अपनी पहचान देती है। दूसरे अर्थों में यहाँ की लोक संस्कृति ही उत्तराखण्ड की सही मायने में परिचायक है। लोक संस्कृति की चर्चा में महत्त्वपूर्ण है, यहाँ के परिधान, आभूषण, लोकगीत, लोकनृत्य आदि और समय–समय पर इन लोक पर्वों व नृत्यों में ये परिधान आभूषण यहाँ के स्त्री पुरुषों की छवि को निखारने में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

उत्तराखण्ड जो धार्मिक एवं सांस्कृति है विरासत का धनी है उसमें यहाँ के विभिन्न जाति एवं जनजातियों वर्गों का सम्मिलित योगदान है। उत्तराखण्ड के लिए यह कहना भी आवश्यक होगा कि इस सम्पूर्ण समुदाय में सांस्कृतिक–धार्मिक–सामाजिक–क्षेत्रीय आधार पर रची – बसी है उत्तराखण्ड की पहचान का एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यहाँ के वस्त्राभूषण है क्योंकि वेशभूषा किसी भी पहचान का प्रथम साक्ष्य है। प्रत्येक वर्ग पात्र या चरित्र का आंकलन भी वस्त्राभूषण अथवा वेशभूषा ही हैं।

भारत के विभिन्न अंचलों में राजस्थान, गुजरात, मद्रास, बंगाल, महाराष्ट्र या उत्तराखण्ड हो या फिर सिक्किम – भूटान सभी की अपनी एक विशिष्ट पहचान होती है जो उसे उस क्षेत्र से सम्बन्धित होने का मापदण्ड प्रस्तुत करती है। वास्तव में यह वेषभूषा ही है जो उपर्युक्त मापदण्ड पर खरी उतरती है। इसी प्रकार उत्तराखण्ड के क्षेत्र की जब हम बात करें तो इस स्थान की भी अनेक जातियों जनजातियों के सम्मिलित समुदाय में सांस्कृतिक और धार्मिक एकता दिखाई देती है। जिसका आधार धर्म और प्राचीन परम्पराएं, रीति–रिवाज संस्कार, त्यौहार–उत्सव एवं धार्मिक अनुष्ठान है। ये इन परम्पराओं को जन्म देते है। सम्मान और श्रद्धा विश्वास और आस्था इनके मानस में जड़ –स्वरुप विद्यमान रहते है। जिनकी वजह से आगे आने वाली पीढ़ियाँ भी इन परम्पराओं को वर्तमान युग तक नकार नहीं पाई है। इन्हीं गूढ तत्त्वों का परिणाम है उत्तराखण्ड के निवासियों की वेशभूषा। यहाँ प्राचीन परम्पराओं धार्मिक विश्वास, रीति–रिवाज उत्तराखण्ड की जलवायु, भौगोलिक–सामाजिक–स्थितियाँ, आर्थिक स्थितियाँ, व्यवसाय शिक्षा ग्रामीण अथवा आदिम जनजीवन, लोक विश्वास इन सभी का यहाँ के पहनावों पर प्रभाव पड़ा है।

शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों तथा सीमान्तर व तराई क्षेत्रों में बसने वाली जनजातियों में परस्पर समानतायें भी है तो उनकी अपनी निजी पहचान भी जो दर्शाती है कि ये भोटिया नारी है अथवा राजस्थान की मीणा जनजाति। इस प्रकार उत्तराखण्ड कि शौका एवं बुक्सा जनजाति। कुमाऊँनी जनजाति या फिर भारत के अन्य प्रान्तों की जनजाति। इन सभी पक्षों का उजागर करने में वेशभूषा या पहनावा अथवा वस्त्राभूषण सहायक सिद्ध हुए है।

उत्तराखण्ड की वस्त्राभूषण परम्पराओं आदिम युग से प्रारम्भ होती है। उत्तराखण्ड में विभिन्न जातियों के अनुसार वस्त्राभूषण को धारण करने की प्रथा है जैसे कुमाऊँ–गढ़वाल की बुक्सा, थारु या जौहारी जनजातियाँ । इनमें पैरों के आभूषण पहनने के रिवाज है।

जौहारी जन जनजाति की स्त्रियाँ अनेक प्रकार के वस्त्राभूषण को धारण करती है। जैसे पुलिया, पैजाम, झड़तार छाड़ आदि पैर में पहनने वाले आभूषण है। इन आभूषणों के नामों में भिन्नता क्षेत्रों के अनुसार होती है। पुलिया उत्तराखण्ड के अनुसार के अन्य क्षेत्रों में पैरों की अँगुलियों में पहनने वाले आभूषण जिसका प्रचलित नाम बिच्छु है। गढ़वाल में विछुआ है। कुमाऊँ भारत के अन्य क्षेत्रों में या भारत के प्राचीन कालीन आभूषणों में बिछिया नाम आता है। कुमाऊँ–गढ़वाल में इस प्रकार की अनेक परम्पराओं का प्रचलन है। गले में पहनने वाली सिक्कों की माला उत्तराखण्ड के लगभग सभी वर्णों की जनजातियों में प्रचलित है। गढ़वाल में गले में धारण करने वाले आभूषण को हमेल और कुमाऊँ में अठन्नीमाला, चवन्नीमाला, रुपैमाला, गुलूबंद लाकेट चर्यों, हँसुली, कंठीमाला, मूँगों की माला इत्यादि नामों से जाना जाता है।

उत्तराखण्ड में आभूषणों के साथ–साथ वस्त्रों का भी अधिक महत्व है। उत्तराखण्ड के अनेक लोकनृत्यों के अनुसार वस्त्रों को धारण किया जाता है। यहाँ के रीति–रिवाज, वेश–भूषा, खान–पान, धर्म, जातियों–जनजातियों का गौरवमयी जीवन आंकलन, आभूषण, लोकगीतों–लोकगाथाओं, लोककलाओं, हस्तशिल्प उद्योगों के अभूतपूर्व भण्डार से युक्त है। लोककला यहाँ की परम्परा का महत्वपूर्ण अंग है।

भारत व उत्तराखण्ड में संगीत व लोक नृत्य इनके जनजीवन में समाया हुआ है। देवी–देवताओं की स्तुति, त्यौहारों–पर्वों आदि पर पांडव, झुमेलों, चौपाल (चौंकुला), थाड़या आदि लोक नृत्य किये जाते हैं। यहाँ की प्रमुख दस्तकारी या हस्तशिल्प उद्योग भी उत्तराखण्ड वेश–भूषा व आभूषणों का एक महत्वपूर्ण धरातल माने जा सकते हैं। हस्त करघा उद्योग यहाँ का परम्परागत व्यवसायों के अन्तर्गत आ जाती है। इसके अतिरिक्त धातु शिल्प, काष्ठशिल्प आदि में भी यहाँ के शिल्पकारों का हस्तक्षेप रहा है। उत्तराखण्ड वेश–भूषा व आभूषणों में अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं जो इस क्षेत्र की पहचान देने में अपना योगदान देती है।

परिधान यानी पहनावा, वेश–भूषा जो भारत के सांस्कृतिक जीवन का एक पहलू है। अधिकांश लोगों के तर्क होते हैं कि वेश–भूषा विकास क्रम में नहीं आंकी जाती। जबकि वास्तविकता यह है कि वेश–भूषा ना केवल विकास क्रम को दर्शाती है वरन् इतिहास के सूक्ष्मगत पहलुओं के आंकलन में भी सहायक होती है। आदिवासी जनजीवन से आधुनिक जनजीवन में निर्वस्त्र स्थिति से फैशन डिजाइन तक की स्थिति में क्रमगत विकास देखने को मिलता है। गुफाओं में निवास करने वाला मानव निर्वस्त्र रहने के बाद पेड़ों–छालों–पत्तों आदि के वस्त्ररूप में प्रयोग करने लगा था अपने शरीर के आवरण की सोच उसमें आज से लगभग 15000 ई. पू. से पैदा हो गयी थी। और 3000 ई. पू. में सिंधुघाटी के युग तक आते–आते उसके परिधान विकास में अभूतपूर्व परिवर्तन आ चुका था। यह परिवर्तन ना केवल धोती–चादर या वस्त्रों की सामग्री कपड़ा, रेशम या चमड़े तक सीमित रहा। वरन् सिले हुये कपड़ों की तकनीक में भी प्रवेश हुआ। यह परिवर्तन या क्रम भारत के सम्पूर्ण इतिहास का परिचय देता है। लंगोटी, छोटी धोती या तहमत पहनते थे। यह भारतीय पहनावे की प्राचीन परम्परा में समाहित है और आज भी भारत के कई प्रान्तों में समाहित है और भारतीयता की पहचान भी हैं। न केवल पुरूष परिधानों में वरन् स्त्री वेश भूषाओं में भी लगभग यही क्रम देखने को मिलता है। शिरोवस्त्र पगड़ी, दुपट्टानुमा ओढ़नी आदि आज भी प्राचीन परम्पराओं की ही देन हैं। कपास से बुने सूती वस्त्र, रेशम और ऊनी वस्त्रों की कताई–बुनाई–सिलाई कढ़ाई, जरीदार काम ना केवल विभिन्न तकनीकि के विकास को दर्शाते हैं वरन् विभिन्न नमूनों–डिजाइनों के प्रति भी रूचि व सृजनात्मकता का परिचय देते हैं। इसी के चलते हथकरघा उद्योगों का भी विकास हुआ।

ऊनी कपड़ों का निर्माण भोटिया समुदाय, जाघ, तलोचा और मारचा द्वारा किया जाता हैं। ये खानाबदोश लोग अप्रैल से अगस्त तक भारत तिब्बत सीमा के ऊँचे पठारों पर अपनी भेड़ चराते हैं। अन्ततः ठण्डे मौसम की वजह से भेड़ों पर उच्च कोटि की ऊन आती है। जिसे हाथ से काता व बुना जाता है। इनसे शॉल, कम्बल, गलीचे और दरियों के साथ–साथ घर में सजावट हेतु हैंगिंग्स लटकाने व अन्य उपयोगी सामान जैसे आसन आदि बनाये जाते हैं। पहनने के विभिन्न वस्त्र–हथकरघा उद्योगों में तैयार किये जाते हैं। आधुनिकीकरण ने अब परिधानों में बहुत बदलाव ला दिया है। घर में सिलाई मशीनों के अलावा बाजार में कपड़ों की

सिलाई–बुनाई–कढ़ाई आदि करके बेचना मुख्य व्यवसाय बन गया है। स्त्री–पुरूष दोनों ही इस व्यवसाय में लगे हैं। यद्यपि वेश–भूषा के विभिन्न नाम सभी वर्गों में समान हैं परन्तु फिर भी हर वर्ग का पहनावा कहीं ना कहीं अपनी अलग या निराली कहानी कहता है। वेशभूषा में पोशाकों की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए आगे विचार प्रस्तुत किया गया है कि उत्तराखण्ड की वस्त्रों को अनेक नामों से जाना जाता है। विभिन्न प्रकार के कच्चे माल से निर्मित वस्त्रों को भी विभिन्न नामों से पुकारा जाता था जैसे भांग के रेशे से निर्मित वस्त्र 'भंगोला', भेंड़ आदि जानवरों की खाल के रेशों से निर्मित वस्त्र 'ऊनी' व कपास के रेशे से निर्मित वस्त्र 'सूती' वस्त्र कहलाते थे।

उत्तराखण्ड क्षेत्र में विभिन्न वस्त्रों के प्रचलित स्थानीय नाम निम्न प्रकार हैं – पगड़ी मुन्यासा, टोपी, गाती ऊन, भांग के रेशे से निर्मित मुख्य शरीर का वस्त्र, लंगोट नेकर के स्थान पर प्रयोग होने वाला सूत से निर्मित वस्त्र, दोखी ऊन से निर्मित बिना बाहों का कोट नुमा वस्त्र, ओढ़नी ऊनी, भांग के रेशे से निर्मित चादर इत्यादि अनेक नामों का प्रयोग होता है। उत्तरकाशी जिले की हिमाचल प्रदेश की सीमा से लगी बन्दरपूंछ पर्वत श्रृंखला की पश्चिमी ढाल पर टोंस नदी की घाटियों मे खडवाल नामक जनजाति की स्त्रियाँ भी वहां के पुरूषों की भांति 'फर्जी' (कोट) पहनती हैं। इसके अतिरिक्त 'सौंतण' पहनती हैं तथा सिर पर 'ढॉटू' लगाती हैं। कपड़ा बुनने में पुरूषों के साथ मदद करती हैं। भेड़ की ऊन से स्वयं कपड़े बनाने में यह जनजाति भी शौकाओं की भाँति पारंगत होती है।

इन उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर इतना स्पष्ट हो जाता है कि उत्तराखण्ड क्षेत्र में विभिन्न जातियों व जनजातियों में वस्त्राभूषणों के प्रति लगाव पाया जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. तिवारी ज्योतिः कुमाउनी लोक गीत तथा संगीत शास्त्रीय परिवेश, नई दिल्ली।
2. नौटियाल शिवानन्दः उद्वरण गढ़वाली लोक संगीत एवं वाघ
3. नवानी लोकेशः उत्तरांचल ईयर बुक, 2004।
4. मठपाल यशोधरः उत्तराखण्ड की संस्कृति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उत्तराखण्ड वार्षिकी, उत्तराखण्ड शोध संस्थान, 1987।
5. Jain Madhu and O.C. Handa: Art and Artitecture of Uttarakhand.
6. Ai, Wikipedia.org/wiki/ उत्तराखण्ड।